क्लिनिकल ट्रायलः मानव अधिकार का सवाल

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

दवाइयों के इन्सानी परीक्षण का मकसद क्या है? इसके द्वारा यह सुनिश्चित किया जाता है कि कोई दवा या उपचार सुरक्षित है, निर्धारित खुराक में कारगर है और इसके कोई साइड प्रभाव या कुप्रभाव नहीं हैं। इन्सानी परीक्षण की प्रथा दशकों से क्या, सदियों से चल रही है। शुरुआती दिनों में तो रसायनज्ञ या चिकित्सक स्वयं को ही गिनी पिग की तरह इस्तेमाल करते थे।

मगर सांख्यिकीय आंकड़े यह सुनिश्चित करने के लिए ज़रूरी होते हैं कि कोई उपचार व्यापक पैमाने पर असरदार है। इसके लिए ज़रूरी होता है कि बड़ी संख्या में लोगों पर क्लिनिकल परीक्षण किए जाएं और साथ में लगभग उतनी ही संख्या में तुलना के लिए भी लोग हों, जिन्हें या तो कोई उपचार न दिया जाए या प्लेसिबो अर्थात उपचार देने का नाटक किया जाए।

दरअसल बड़ी संख्या में वालंटियर्स की ज़रूरत ही विवाद का विषय है। 1920 व 1930 के दशक में युरोप व यू.एस. की कुछ कंपनियां जर्मनी व रूस के यहूदी, जिप्सी या आदिवासियों जैसे कमज़ोर तबकों पर परीक्षण किया करती थीं। इसके अलावा यू.एस. के कैदियों और अश्वेत लोगों को भी ऐसे परीक्षण में लिया जाता था।

जब, खास तौर से द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, ये तौर-तरीके उजागर हुए, तो कई देशों ने साथ बैठकर एक न्यूरेमबर्ग संहिता तैयार की। इसमें दस सिद्धांत थे और इसे 1948 में जिनेवा घोषणा पत्र का रूप दिया गया था। इस घोषणा पत्र में क्लिनिकल परीक्षण के सिद्धांत सूचीबद्ध किए गए थे।

वर्ल्ड मेडिकल एसोसिएशन चिकित्सा कारोबारियों और शोधकर्ताओं का एक समूह है जिसमें अधिकांशतः युरोप और उत्तरी अमेरिका के डॉक्टर्स हैं मगर कुछ अन्य देशों के सदस्य भी हैं। इस एसोसिएशन ने 1964 में हेलसिंकी (फिनलैंड) में एक बैठक में पूर्व के दिशा निर्देशों को विस्तार दिया और एक हेलसिंकी घोषणा पत्र प्रस्तुत किया।

यह घोषणा पत्र इन्सानों पर प्रयोग कर रहे डॉक्टरों व शोधकर्ताओं के लिए नैतिक दिशा निर्देश देता है। इसमें कई मुमानियत शामिल हैं। हालांकि यह कानूनी रूप से बंधनकारी नहीं है, मगर लगभग पूरी दुनिया में अधिकांश डॉक्टर्स, शोधकर्ता और कंपनियां इसका पालन करते हैं।

घोषणा पत्र में यह व्यवस्था है कि जिस भी व्यक्ति पर शोध किया जा रहा है, उसे परीक्षण के सारे सकारात्मक व नकारात्मक पहलुओं की जानकारी दी जाएगी, और वह व्यक्ति इस परीक्षण में भागीदारी की सहमति देगा। इसमें प्रॉक्सी सहमति की भी गुंजाइश है, जैसे कानूनी अभिभावक या कोई सामुदायिक नेता स्वीकृति दे सकता है।

जैसी कि अपेक्षा की जाती है, घोषणा पत्र की धाराओं में समय-समय पर संशोधन किए जाते हैं। पहला संशोधन 1974 में किया गया था। इसके ज़रिए यह व्यवस्था की गई थी कि एक स्वतंत्र नैतिकता समिति या संस्थागत समीक्षा बोर्ड का गठन किया जाएगा जो किसी परीक्षण की अनुमति देगा, उसमें परिवर्तन सुझाएगा या परीक्षण की अनुमति देने से इन्कार कर सकेगा।

इसके बाद हुए दो संशोधनों (1983, 1989) में अवयस्क की स्वीकृति प्राप्त करने की धारा जोड़ी गई और नैतिकता समिति के कामकाज की बारीकियां परिभाषित की गईं।

हालांकि हेलसिंकी घोषणा पत्र स्वीकार किया गया है और इसका पालन भी होता है, मगर दो अन्य स्वतंत्र दिशा-निर्देश विकसित किए गए हैं। इनमें से एक कौंसिल फॉर इंटरनेशनल ऑर्गेनाइज़ेशन ऑफ मेडिकल साइन्सेज़ व दूसरा विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा विकसित किया गया है।

इस मोड़ पर कुछ मतभेद उभरने लगे थे और कुछ लोग कहते हैं कि निहित स्वार्थों ने ही समांतर दिशा निर्देश विकसित करने में भूमिका निभाई थी। वैसे उस समय छोटे-मोटे अंतरों के अलावा तीनों दिशा निर्देश लगभग एक जैसे

ही थे। माहौल 1994 में तब गर्म हो गया जब एक अमेरिकी कंपनी ने एक इन्सानी परीक्षण करने का इरादा ज़ाहिर किया।

एक एड्स-रोधी दवा का परीक्षण वे यू.एस. में नहीं, किसी विकासशील देश में करना चाहते थे। यहीं से मतभेद शुरू हुए थे। इस परीक्षण के दौरान कुछ वालंटियर्स को दवाई दी जाने वाली थी जबकि तुलना हेतु लिए गए समूह के वालंटियर्स को प्लेसिबो (यानी कोई असरहीन पदार्थ) दिया जाने वाला था। मामला यह था कि यू.एस.के मरीज़ों को तो यह दवा असीमित मात्रा में उपलब्ध थी मगर विकासशील देशों के मरीजों को नहीं। रोचक बात यह है कि यू.एस. की संस्थाएं और विश्व स्वास्थ्य संगठन दोनों कह चुके हैं कि 'प्लेसिबो से तुलना करके किसी दवा का सर्वोत्तम परीक्षण होता है।'

यह बात कौंसिल फॉर इंटरनेशनल ऑर्गेनाइज़ेशन ऑफ मेडिकल साइन्सेज़ के दिशा निर्देशों से मेल नहीं खाती थी। इन दिशा निर्देशों के मुताबिक, "नैतिक मापदंड किसी भी तरह से प्रायोजक देश में किए जाने वाले शोध कार्य पर लागू किए गए मानकों से कमतर नहीं होने चाहिए।"

हेलसिंकी घोषणा पत्र ने जल्दी ही अपने दिशा निर्देशों में 1996 में चौथा संशोधन कर दिया - "दुनिया के किसी भी हिस्से को मानव प्रयोग के वालंटियर्स को एक समान नैतिक मानकों की सुरक्षा मिलनी चाहिए।"

हेलसिंकी और यू.एस./युरोप के बीच विभाजन स्पष्ट सामने आ गया। चिकित्सा की विशेषज्ञ पत्रिकाएं गर्मागरम बहस में डूब गईं और तमाम नए-नए शब्द उभरने लगे: 'नैतिक साम्राज्यवाद', 'बहुलतावाद', 'नैतिक सार्वभौमिकता'।

इसी प्रकार से 2001 के एक परीक्षण का उदाहरण देखिए। यह ऐसी दवा का मामला था जो बच्चों में फेफड़ों के अचानक पिचक जाने को रोकती है और जान बचा सकती है। यह परीक्षण यू.एस. की दवा कंपनी डिस्कवरी लैब्स ने प्रस्तावित किया था और वह यह परीक्षण लैटिन अमेरिकी देशों के बच्चों पर करना चाहती थी। तुलना हेतु लिए जाने वाले 325 बच्चों को बाज़ार में उपलब्ध अन्य असरदार दवाइयां देने की बजाय, कंपनी उन्हें असरहीन प्लेसिबो देना चाहती थी।

ऐसे परीक्षणों की अनुमति देने वाले यू.एस. के खाद्य व औषधि प्रशासन ने चेतावनी दी कि ऐसा करना अनैतिक होगा क्योंकि यू.एस. व युरोप में असरदार उपचार उपलब्ध हैं, चाहे लैटिन अमरीका में न हों। इसके बाद कंपनी को अपने प्रोटोकॉल में परिवर्तन करना पड़ा और तुलना समूह को वैकल्पिक असरदार उपचार देना पड़ा। यह हेलसिंकी घोषणा पत्र के अनुरूप था।

मगर कंपनी व प्रायोजकों के बढ़ते दबाव के चलते खाद्य व औषधि प्रशासन झुकने लगा है। उसने घोषणा की है कि अक्टूबर 2008 से वह हेलसिंकी घोषणा पत्र को ताक पर रख देगा और एक वैकल्पिक मानक (गुड क्लिनिकल प्रैक्टिस) का इस्तेमाल करेगा। गुड क्लिनिकल प्रैक्टिस नामक यह दस्तावेज़ यू.एस., युरोपीय संघ और जापान के औषधि नियंत्रकों और दवा कंपनियों ने मिलकर तैयार किया है।

जैसा कि नेचर पत्रिका ने अपने 22 मई 2008 के अंक में लिखा है: "हालांकि गुड क्लिनिकल प्रैक्टिस में व्यक्तियों की सुरक्षा की बात कही गई है मगर यह मूलतः इस बात का मैनुअल है कि क्लिनिकल परीक्षण कैसे करें, न कि मानव अधिकार का दस्तावेज़। यदि खाद्य व औषधि प्रशासन हेलसिंकी घोषणा पत्र को फेंक देता है, तो वह यह संदेश देने का खतरा मोल ले रहा है कि जिन व्यक्तियों पर शोध किया जा रहा है यदि वे दूसरे देश के हैं, तो नैतिक मापदण्डों को धता बताई जा सकती है।"

भारतीय संस्थाओं, जैसे औषधि महा नियंत्रक, भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद, और अनुबंध पर इन्सानी परीक्षण करने वाली संस्थाओं को इस बात पर ध्यान देना चाहिए। कुल मिलाकर हेलसिंकी घोषणा पत्र 'सार्वभौमिक नैतिकता' का हिमायती है। हमें यू.एस. के खाद्य व औषधि प्रशासन का अनुकरण नहीं करना चाहिए। ऐसा तो कोई नही कह सकता कि कुछ इन्सान दूसरों से ज़्यादा बराबर होते हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***